धूतपापेश्वर

।। आरोग्यचिंतन ।।

पत्रिका

।। शास्त्रतत्त्वप्रकाशार्थं एषा चिन्तनपत्रिका ।।

जून २०२०

AROGYACHINTAN PATRIKA

आधुनिक युग जनपदोध्वंसः कोविड –१९

कोरोना वायरस रोग (कोविड–१९), एक घातक एवं संक्रामक रोग है, जो सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटोरी सिन्ड्रोम कोरोनावायरस–२ (SARS-coV-2) के संक्रमण से होता है। इसे **'कोरोना'** नाम दिया गया है, क्योंकि इसकी संरचना एक मुकुट के समान है।[1] **कोविड–१९** का पहला रुग्ण दिसंबर २०१९ के अंत में चीन के वुहान प्रांत में पाया गया और तब से यह प्राणवहस्रोतस विकार विश्वभर में लाखों लोगों को प्रभावित कर रहा है। कोविड–१९ जनपदोध्वंस ने विश्व के करोडों लोगों को अपने घरों मे बंद कर, उनके जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतिकूल प्रभाव डाला है। **कोविड–१९** जनपदोध्वंस अपने नामस्वरुप संपूर्ण जनपद के उध्वंस का कारण बना है।

कोरोना विषाणु (वायरस) की रोगोद्रवन अवधि २–१४ दिनों की होती है। गंभीर स्वरुप का श्वास अत्यंत तीव्र व्याधी का संकेतक होता है। प्रतिबंधक उपायों मे समय–समय पर हाथ धोना (स्वच्छता पालन), सामाजिक भीडभाड से दूरी (सोशल डिस्टन्सिंग) बनाए रखना, फेस मास्क का उपयोग और संक्रमित रुग्णों के साथ निकट संपर्क से बचना शामिल है। **कोविड–१९** के संदिग्ध रुग्णों में चिकित्सार्थ – प्राथमिक निदान, रुग्ण पृथ्थकरण, कठोर नियंत्रण उपाययोजना और उपयुक्त सहायक देखभाल की जा रही है। **कोविड–१९** की तीव्रावस्था में प्राणवायु एवं कृत्रिम श्वसन व्यवस्था (वेंट्रिकुलर सपोर्ट) का उपयोग किया जा रहा है। अब तक कोई भी विशिष्ट टीका (वैक्सीन) अथवा विषाणु–विरोधी (एंटीवायरल) औषधी उपलब्ध नही हुई है। यह संपूर्ण कार्य विकास के अधीन है और कुछ उपलब्ध एंटीवायरल औषधीयों का अनुभवजन्यरुप से उपयोग किया जा रहा है। संक्रमण से बचने अथवा चिकित्सा हेतु एंटीवायरल औषधीयों का उपयोग किया जा रहा है। अभी भी इस रोग को संपूर्णतः समझने हेतु अनेक संशोधन चल रहे है ।

मधुमेह, जीर्ण वृक्करोग, उच्च रक्तचाप (हृद्रोग), आदि रोगों से ग्रस्त रुग्णों में **कोविड–१९** घातक सिद्ध हो सकता है। उत्तम व्याधिक्षमत्व इस संक्रमण से संरक्षण हेतु सहायक है।

जनपदोध्वंस के समय में आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सहायक हो सकती है। आयुर्वेद ने जनपदोध्वंस विकारों का वर्णन औपसर्गिक रोग अथवा संक्रामक रोग (कम्युनिकेबल डिसीजेस) और जनमार (एपिडेमिक) के अंतर्गत किया है।

सामान्यास्तद्वैगुण्यात्समानकाला:समानलिङ्गाश्चव्याधयाऽभिनिर्वर्तमानाजनपदमुध्द्वंसयन्ति तेखल्विमेभावा:सामान्याजनपदेषुभवन्ति:तद्यथा – वायु:, उदकँ, देश:, कालइति।।

आचार्य चरक ने जनपदोध्वंस का वर्णन विमानस्थान अध्याय ३ में विस्तारपूर्वक किया है।

औपसर्गिक रोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् । – सु.नि.५/३४

जनपदोध्वंस का शाब्दिक अर्थ : सभी जीवों के संघटन में उपयुक्त चार प्राथमिक घटक वायु, उदक (जल), देश (भूमि) और काल का प्रतिकूल होकर समुदायों का विनाश, जिसके परिणामस्वरुप एक साथ होनेवाले रोगों का समकालीन प्रकोप होता है।

कोविड–१९ यह प्राकृत मूलस्वरुप से औपसर्गिक रोग है, जिसकी वजह से यह एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को संक्रमित करता है, परंतु जब यह समुदाय के स्तर पर संक्रमण करता है, तब इस स्थिती में जनपदोध्वंस का स्वरुप प्राप्त कर लेता है।

प्रसंङ्गाद् गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्याऽऽसनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ।।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संङ्क्रामन्ति नरान्नरम्।। – सु.नि.५/३३–३४

आचार्य सुश्रुत ने प्रसंगात, गात्रसंस्पर्शात, नि:श्वासात्, सहभोजनात्, सहशय्यासनात्, वस्त्रमाल्यानुलेपनात, आदि के कारण निकट संपर्क से जनपदोध्वंस विकारों का संक्रमण होने का वर्णन किया है।

जनपदोध्वंस रोगों की चिकित्सा निम्न दो प्रकारों में वर्गीकृत की जा सकती है:

प्रतिबंधात्मक: औषधी और अन्न संग्रह, दिनचर्या, ऋतुचर्या, ब्रम्हचर्य, सदवृत्त पालन, रसायन कर्म, पंचकर्म, योग–तप–नियम, आरोग्य/स्वास्थ्य शिक्षण, त्वरित प्राथमिक निदान, रक्षोगुण अथवा व्याधिक्षमत्व, आदि।

व्याधिक्षमत्वं नाम व्याधि बलविरोधित्वं व्याध्युत्पादप्रतिबंधकत्वमिति। – चक्रपाणि च.सू. २८/१६

व्याधिनियंत्रण अथवा निवारण: किसी भी व्याधी में रोग–रोगी–परीक्षा अथवा निदानपंचक के मूल सिद्धांत, रोग की संप्राप्ती को समझने और चिकित्सा हेतु उपयुक्त योगों का प्रारुपण करने में सहायता करते है। आयुर्वेद शास्त्र चिकित्सा और रुग्णों के लाभ हेतु कई प्राचीन और शास्त्रीय योग प्रस्तुत करता है।

तमुवाच भगवानात्रेयः – ज्वरितस्य कायसमुत्यानदेशकालानभिसमीक्ष्य पाचनायं पानीयमुष्णं प्रयच्छन्ति भिषजः। ज्वरो ह्यामाशयसमुत्यः, प्रायो भेषजानि चामाशयसमुत्यानां विकाराणां पाचन–

जनपदोध्वंस जन्य विकारों में ज्वर एक मुख्य लक्षण हो सकता है। उष्ण जलपान से आमाशयस्थ दोषों के पाचन तथा निवारण में सहायता होती है।

अ. औषधी और पंचकर्म चिकित्सा:

विगुणेष्वपिखल्वेतेषुजनपदोध्द्वंसकरेषुभावेषुभेषजेनोपपाद्यमानानामभयंभवतिरोगेभ्यइति। येषांनमृत्युसामान्यंसामान्यंनचकर्मणाम्कर्मपश्चविधंतेषांभेषजंपरमुच्यते ।

आचार्य चरक ने जनपदोध्वंस रोगों के प्रबंधन में औषधी चिकित्सा के साथ–साथ पंचकर्म चिकित्सा के महत्व का वर्णन किया है। पंचकर्म चिकित्सा का आवश्यकता अनुसार उपयोग किया जाना चाहिए। हालांकि, तिल तैल नस्य सदैव उपयुक्त हो सकता है।

ब. रसायन चिकित्सा:

रसायनानांविधिवच्चोपयोग: प्रशस्यतेशस्यतेदेहवृत्तिश्चभेषजै: पूर्वमुद्धतै:।।

आयुर्वेद शास्त्र व्याधिक्षमत्व को बढ़ाने में किसी भी रोग के प्रतिबंधन अथवा नियंत्रण के लिए अपने सार्वभौमिक मूल सिद्धांत को प्रस्तुत करता है। **कोविड–१९** जनपदोध्वंस के प्रतिबंधन अथवा निदान–परिवर्जन हेतु कुछ उपयुक्त और समय–परीक्षित शास्त्रीय योग प्रस्तुत किए जा रहे है:

उत्तम व्याधिक्षमत्व हेतु	रसायन चूर्ण, सुवर्णमालिनी वसंत, लघुमालिनी वसंत, यशद भस्म, आदि।
ज्वर और संबंधित लक्षणों में उपयुक्त	संशमनी वटी, गुडूची सत्व, अमृतारिष्ट, महासुदर्शन चूर्ण, कालमेघ, लक्ष्मीविलास रस (नारदीय), आदि।
उत्तम प्राणवह स्रोतस रसायन	च्यवनप्राश अवलेह, श्वासकासचिन्तामणि रस, तालीसादि चूर्ण, आदि।
रसायनोपयोगी एकल औषधी	तुलसी, यष्टिमधु, कण्टकारी, आमलकी, हरिद्रा, पिप्पली, शुण्ठी, आदि।

रसायन चिकित्सा का उपयोग अग्निवर्धन एवं दोष–वैषम्य दूर करने के साथ–साथ प्राणवहस्रोतस को बल देने एवं व्याधिक्षमत्व बढ़ाने में भी सहायक होता है। इसप्रकार, सदैव और ध्यानपूर्वक आयुर्वेदीय जीवनशैली (निवारक आहार और विहार) का पालन करने पर स्वास्थरक्षण और रोगप्रतिकार शक्तिवर्धन में सहायता हो सकती है।

[1] Cascella M, Rajnik M, Cuomo A, et al.

प्रमेह चिकित्सा हेतु मधुमेह कुसुमाकर रस ।

प्रमेह यह शब्द **'प्र'** (उपसर्ग) **'मिह'** (क्षरणे धातु) से बना है। इस शब्द से अधिक मात्रा में विकारयुक्त मूत्र निकलने का तात्पर्य होता है। आचार्य चरक (४००-५०० इ.स.) ने **'प्रभूताविलमूत्रता'** अर्थात मूत्र की अधिक मात्रा और गंदलापन होना, यह प्रमेह का सामान्य लक्षण बताया है।

आचार्य चरक द्वारा युगों पहले निम्नलिखित प्रमेह के हेतु और जोखिम कारक घटकों का वर्णन किया है।

तत्रेमे त्रयो निदानादिविशेषः.......स सर्वो निदान-विशेषः - च.नि. ४/५

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानुपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम्।। - च.चि. ६/४

कफकारक आहार का अत्यधिक और सदैव सेवन, जैसे - घृत के साथ नव धान्य और दाल; पालतू, दलदली और जलीय प्राणीयों का मांस; सब्जियाँ, तिल, तिलकल्क, पिष्टान्न (गेहु का आटा), खीर, कृशरा (तिल/ चावल की खिचडी), विलेपी (खिचडी से पतली), गन्ने से बने पदार्थ (खांड, गुड), दुध, नव मद्य, अपरिपक्व अथवा ताजा दही, द्रव, मधुर अथवा नव पदार्थों का अधिक सेवन, शरीर शुद्धि, व्यायाम, श्रम आदि का अभाव, अत्याधिक निद्रा, लेटे रहना या बैठे रहना और इनके व्यतिरिक्त सर्व कफ, मेद और मूत्र वृद्धिकारक निदान।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोँस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः।
मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां, विंशतिरेव मेहाः ।। - च. चि. ६/८

प्रमेह में क्रमश: क्लेदक कफ, पाचक पित्त और वात दोषों के प्रकोप के साथ - मेद, रक्त, अम्बु, वसा, लसीक, मज्जा, रस, ओज और मांस दुषित होते है। इन दोष-दूष्यों के परस्पर संयोग से प्रमेह के मुख्यतृ ३ प्रकार और कुल २० उपप्रकारों (कफज -१०, पित्तज -६, वातज-४) का वर्णन है।

आचार्य सुश्रुत ने प्रमेह के इन्ही प्रकारों का वर्णन **अपथ्यनिमित्तज** (विकृत आहार-विहार जनित) प्रमेह के रुप में किया है। उन्होंने बीज दोष अथवा अनुवंशिकता के कारण उत्पन्न प्रमेह के अन्य प्रकार का भी वर्णन किया है, जिसे **सहज प्रमेह** कहते है। आचार्य चरक ने इस प्रकार को **जातप्रमेही** (बीजदोष, अनुवंशिकता, पारिवारिक इतिहास अथवा कुलज हेतु) के रुप वर्णित किया है, जो कि असाध्य है।

जातः प्रमेहीमधुमेहिनो वा न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्।
ये चापि केचित् कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ।। - च.चि. ६/५७

साथ ही, आचार्य चरक ने सूत्रस्थान, यज्जः पुरुषीयाध्याय - ४० में **'प्रमेहोऽनुषङ्गिणाम्'** इस प्रकार का वर्णन किया है, क्योंकि प्रमेह रोग में जल्दी उपशय प्राप्त नहीं होता है।

उपरोक्त वर्णित प्रमेह प्रकारों में से, कफज प्रमेह साध्य, पित्तज प्रमेह याप्य और वातज तथा जातप्रमेही असाध्य है।

आज के युग में, प्रमेह को डायबेटिस, जों कि एक जटिल, जीर्ण और चयापचय संबंधी विकार (मेटाबोलिक डिसऑर्डर) के साथ संबंधित किया जा सकता है।

प्रमेह प्रबंधन के लिए निरंतर उपाययोजना आवश्यक होती है एवं रक्तशर्करा नियंत्रण (ग्लाइसीमिक कण्ट्रोल) के साथ-साथ शरीर के मुख्य अवयव (जैसे नेत्र, वृक्क, यकृत, आदि) के संरक्षण हेतु भी चिकित्सा उपायों की आवश्यकता है। भारत में प्रमेह एक सर्वसामान्य और गंभीर विकार है एवं भारत का ७.३ करोड़ वयस्क जनसमूह प्रमेह से पीड़ित होने का अनुमान लगाया जाता है। भारत के ४२ % मधुमेही रुग्णों को यह पता ही नहीं होता कि उनको मधुमेह है एवं इन्ही रुग्णों में मधुमेह के गंभीर उपद्रव हो सकते है।[1] भारत मे लगभग १३.५ करोड व्यक्ति स्थौल्य से पीड़ित होने का अनुमान है एवं स्थूल व्यक्तियों में मधुमेह होने की संभावना अधिक होती है।[2]

प्रमेह (डायबिटीस) का निकटतम संबंध मेटाबोलिक सिंड्रोम (चयापचय संबंधी विकार) से होता है, जो निम्नोक्त गंभीर अवस्था अथवा व्याधियों का एक समूह है - स्थौल्य (सेंट्रल ओबेसिटी), उच्च रक्तदाब (हाइपरटेंशन), रक्तशर्करा वृद्धि (इन्क्रीज्ड ब्लड-शुगर), रक्त में मेदांश (ट्राइग्लिसराइड्स) वृद्धि, जो शरीर के लिए हानिकारक है और हृदय संरक्षणार्थ उपयोगी उच्च घनत्ववाले लिपोप्रथिन (हाई डेंसिटी लिपोप्रोटीन - सी) में कमी। इन्सुलिन प्रतिरोध (इन्सुलिन रेजिस्टेंस अथवा हाइपर-इन्सुलिनेमिया अर्थात बढी हुई रक्तस्थित इन्सुलिन मात्रा) के कारण इन अवस्था अथवा व्याधियों में उभार (अधिक गंभीर होना) आता है। आनुवंशिकता और अस्वास्थकर, कफकर, मेदोवृद्धिकर आहार के अलावा स्थौल्य और शारीरिक निष्क्रियता (व्यायामादि का अभाव) इन्सुलिन रेजिस्टेंस के प्रमुख कारण है।

स्वास्थ्य जीवनशैली (आहार-विहार, चर्या अथवा अस्वास्थ जीवनशैली परित्याग और व्यायाम) के प्रमेह चिकित्सा में अनन्यसाधारण महत्व है। व्यायामादि से शारीरिक गतिविधी में सुधार कर पिष्टान्न (कार्बोहाइड्रेट) और उच्च कैलोरी वाले खाद्य पदार्थों के सेवन से बचाव यह सर्व उपाय इन्सुलिन रेजिस्टेंस को कम करते हैं। स्थौल्य (शारीरिक भार) कम करने से इन्सुलिन रेजिस्टेंस कम होकर इन्सुलिन संवेदनशीलता में सुधार होता है।[3]

मधुमेह कुसुमाकर रस, यह एक तर्कसंगत प्रमेहघ्न रसौषधी है। यह सुवर्णयुक्त वसंत कुसुमाकर रस जैसे शास्त्रोक्त मेहघ्न कल्प तथा प्रमेह चिकित्सा में उपयुक्त अन्य भेषज औषधीयों से युक्त उत्तम कल्प है। सुवर्णयुक्त वसंत कुसुमाकर रस को ग्रंथकारों ने 'आयुर्वृद्धिकर' संज्ञा से वर्णित किया है क्योंकि उपद्रव्ययुक्त प्रमेह में शीघ्र आयु का ऱ्हास होता है।

मन्दोत्साहमतिस्थूलमतिस्निग्धं महाशनम ।
मृत्युः प्रमेहरुपेण क्षिप्रमादाय गच्छति ।। - च.नि. ४/५१

मधुमेह कुसुमाकर रस स्थित घटक द्रव्य जैसे- माम्मेजक, हरिद्रा, आमलकी, गुडूची, असन आदि उत्कृष्ट रसायन, बल्य, शोथहर, स्थौल्यहर, मेदनाशक, वृष्य, चक्षुष्य, यकृत-बल्य और मेहनाशक है। **मधुमेह कुसुमाकर रस** के निम्नोक्त प्रभाव सिद्ध है:[4]

१. उच्च रक्तशर्करा (हाइपरग्ल्यासेमिया) का नियंत्रण।

२. इन्सुलिन प्रतिरोध (इन्सुलिन रेजिस्टेंस) का नियंत्रण।

३. रक्त में बढे हुए मेदांश (ट्राइग्लिसराइड्स) की मात्रा का नियंत्रण।

४. अग्नाशय के ऊतकों (पैंक्रियाटिक टिश्यू) का संरक्षण।

आहार नियंत्रण, उपयुक्त पोषण और शारीरिक व्यायाम स्वस्थ्य जीवनशैली को अपनाकर, **मधुमेह कुसुमाकर रस** का प्रयोग, प्रमेह और प्रमेह-उपद्रव चिकित्सा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

[1] BMJ Open Diabetes Research and Care 2020;8:e000965.
[2] Diabetes & Metabolic Syndrome: Clinical Research & Reviews, Volume 13:1, 2019, 318-321.
[3] Nutrition & diabetes, 7(6), e282.
[4] Sponsor: Shree Dhootapapeshwar Limited, Performing Laboratory: Prin. K. M. Kundnani College of Pharmacy, To Study the Effect of Madhumeha Kusumakar Rasa in Dexamethasone-induced Insulin Resistance in Albino Wistar Rats.

मधुमेह कुसुमाकर रस®
प्रमेह चिकित्सा मे उत्तम रसायन।
उपयुक्तता
मधुमेह और संबंधित उपद्रव
• मधुमेहजन्य नेत्रविकार
• इंद्रियशैथिल्य
• दुष्ट व्रण
• दौर्बल्य

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोली की मात्रा में दिन में एक से दो बार, गोघृत, कोष्ण जल के साथ अथवा रोगावस्थानुसार
Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902614
Madhumeha Kusumakar Rasa
उपलब्धता : ३० गोली (ब्लिस्टर पैक)

शिलाप्रवंग मौक्तिकयुक्त – वार्धक्यावस्था की एक संजीवनी।

वार्धक्यावस्था यह आयु के तीन अवस्थाओं में से एक नैसर्गिक अवस्था है, जिसमें शरीर धातु एवं अवयवों में रचनात्मक एवं क्रियात्मक बदलाव होते हैं [१]। वार्धक्यावस्था में मनुष्य शरीर में रोगप्रतिकार शक्ति एवं धातुनिर्माण प्रक्रिया में ह्रास, एवं विविध रोगों से ग्रस्त होने की संभावना अधिक होती हैं और प्रजनन क्षमता में भी कमी आती है।[२]

सन २००१ में, ६० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की गणना कुल भारतीय जनसंख्या के ७.४ प्रतिशत से भी अधिक थी।[१] सन २०११ में यह संख्या ८.६ प्रतिशत तक बढ़ गयी और सन २०५० तक यह १९ प्रतिशत तक बढ़ने का अनुमान लगाया जाता है। वैश्विक रुप से, यह अनुमान लगाया जा रहा है कि, अगले २–३ दशकों में वृद्ध (६५ वर्ष और उससे अधिक आयु के) व्यक्तियों की जनसंख्या बच्चों (५ वर्ष से कम आयु) की जनसंख्या से दोगुनी होगी[१]। इसका अर्थ है कि, विश्व में बालरोग विशेषज्ञों की तुलना में अधिक जराव्याधी चिकित्सकों की आवश्यकता होगी।[१]

भारत में वृद्ध व्यक्ति संक्रामक और असंक्रामक दोनों रोगों से पीड़ित है। ७० वर्ष से अधिक आयु के ५० % से अधिक वृद्ध व्यक्ति एक या अधिक जीर्ण व्याधियों से पीड़ित हैं। इन जीर्ण व्याधियों में सामान्यतः उच्च रक्तचाप (हाइपरटेंशन), हृदय रोग (कोरोनरी आर्टरी डिसीज) और कर्करोग (कैंसर) का समावेश होता हैं [३]। इसके अलावा वृद्ध व्यक्तियों में अन्य सामान्य व्याधी जैसे, मधुमेह (डायबिटीज) और जीर्ण जानु–सन्धिवात (नी–ऑस्टियोआर्थराइटिस) की संभावना होती हैं। रोगप्रतिकार शक्ति (इम्युनिटी) में ऱ्हास होने से संक्रामक रोगों की संभावना बढ़ जाती हैं। इसके अतिरिक्त, चक्षु और श्रवण जैसे इन्द्रियों की कार्यक्षमता में ऱ्हास दिखाई देता हैं।

वृद्ध व्यक्तियों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य स्तर बनाए रखने एवं वृद्धि तथा रोगमुक्ति हेतु, विश्वभर में व्यापक रुप से जराव्याधी चिकित्सालयों (गेरिएट्रिक क्लीनिक) की स्थापना हुई है। भारत की ऍलोपथी चिकित्सा पद्धति में अपेक्षाकृत, पश्चिमी देशों की तुलना में जराव्याधीचिकित्सा (गेरिएट्रिक्स) यह एक नयी शाखा/अंग है। आयुर्वेद, भारत एवं विश्व की एक प्राचीनतम चिकित्सा प्रणाली है, जिसमे **रसायन (जरा) चिकित्सा** को एक विशेष अंग के रुप मे वर्णित किया है।

कायबालग्रहोध्र्वाङ्धगशल्यदंष्ट्राजरावृषान
अष्टावङ्धगानितस्याहुश्चिकित्सायेषुसंश्रिता – वाग्भट

अष्टांग आयुर्वेद के ८ अंग (शाखा) है।

१. कायचिकित्सा (सर्व शरीर, पाचकाग्नि चिकित्सा)
२. बालचिकित्सा (बालरोग चिकित्सा)
३. ग्रहचिकित्सा (मानसरोग चिकित्सा)
४. ऊर्ध्वंग चिकित्सा (मुख–कर्ण–नासा–नेत्र–आदि के व्याधि चिकित्सा)
५. शल्यचिकित्सा (शल्यकर्म द्वारा चिकित्सा)
६. दंष्ट्रा चिकित्सा (विष चिकित्सा)
७. **जरा चिकित्सा (रसायन एवं वार्धक्यरोग चिकित्सा)**
८. वृष्य चिकित्सा (वाजीकरण चिकित्सा)

जरा चिकित्सा (रसायन एवं वार्धक्यरोग चिकित्सा) एसी शाखा है, जो विशेष रुप से वार्धक्यजन्य रोग और उनकी चिकित्सा का वर्णन करती है।

रसायन की व्याख्या:

''लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्''।। – च. चि.
''रसायनं च तत् ज्ञेयं यत्त् जरा व्याधि नाशनम्''। – शा.सं
''रसानाम् रस रक्तादीनाम् अयनम् आप्यायनम् रसायनम्''। – डल्हण

'रसायन' दो शब्दों से मिलकर बना है, अर्थात् 'रस' और 'अयन'। 'रस' का अर्थ है पोषक द्रव (रसा–रक्तादि सप्तधातु) और 'अयन' का अर्थ है मार्ग (वृद्धि)। इससे यह स्पष्ट होता हैं कि, **रसायन चिकित्सा** प्रशंसनीय गुणयुक्त रस–रक्तादि सप्तधातुओं को प्राप्त करने का उपाय (मार्ग) है। **रसायन चिकित्सा** अनिवार्य रुप से निम्नोक्त कार्य से अकाल वार्धक्य का नाश करता है:

१. धातुओं का उत्तम पोषण
२. शरीर का पोषण एवं यापन
३. वयस्थापन
४. आयुवर्धन
५. मेधावर्धन
६. बलवर्धन
७. रोगनाशन

रसायन चिकित्सा के लाभ:

दीर्घमायु: स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वय: ।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलं परम् ।।
वाक्सिद्धिं प्रणतिं कान्तिं लभते ना रसायनात् । – च. चि.

रसायन चिकित्सा से दीर्घायु, स्मृति, बुद्धि, स्वास्थ्य (रोग से मुक्ति), युवावस्था, त्वचा में कांति और उत्तम स्वर, उदारता, शरीर और इंद्रियों की इष्टतम शक्ति, उत्तम निष्ठावान और कर्तुत्वान शरीर की प्राप्ती होती हैं।

रसायन चिकित्सा द्वारा आयुर्वेद के मूल उद्देश्य, स्वास्थ्यरक्षण और रोगप्रशमन में सहायता होती हैं। **रसायन चिकित्सा** अग्निवर्धन, पाचन, धातुपोषण एवं दोषवैषम्य दूर कर त्रिदोष–साम्य निरंतर बनाए रखने का कार्य करती हैं।

विविध रसायन द्रव्य जैसे, गुडुची, गोक्षुर, शिलाजित, वंग भस्म, आदि धातुपोषक, व्याधिक्षमत्ववर्धक, मस्तिष्कशामक (एंटी–स्ट्रेस) एवं अन्य पोषक गुणों के लिए सिद्ध है। कुछ रसायन उपचारों का विशिष्ट धातु जैसे, शुक्र धातु (रिप्रोडक्टिव टिश्यू) पर विशिष्ट कार्य होता है। **रसायन चिकित्सा** वार्धक्यावस्था में सकारात्मक आरोग्य को विवर्धित कर शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखती है। धातुक्षयजन्य (डिजनेरेटिवे) विकार जैसे संधिगत वात, अस्थिधातुक्षय, मानसरोग, कम्पवात (पार्किंसंस रोग) और जननेन्द्रिय एवं मूत्र विकार जैसे मूत्र–असंयमिता (इन्कॉन्टिनेंस), आदि में **रसायन चिकित्सा** उपयुक्त है।

वार्धक्यावस्था में शिलाप्रवंग मौक्तिकयुक्त की कार्मुकता:

शिलाप्रवंग मौक्तिकयुक्त यह शिलाजीत, वंगभस्म, मौक्तिक पिष्टी, सुवर्णमाक्षिक भस्म, भीमसेनी कर्पूर, वंशलोचन, एला, प्रवाल पिष्टी, गोक्षुर और गुडुची सत्व इन घटक द्रव्यों से युक्त एवं उपरोक्त वार्धक्यावस्थाजन्य विकारों में बहुपयोगी उत्तम कल्प हैं।

शिलाप्रवंग मौक्तिकयुक्त में स्थित घटक द्रव्य, रसायन, मेध्य, वृष्य, बल्य, पुष्टिकर, धातुवृद्धिकर, वातहर एवं जीवनीय गुणों से युक्त होने से वार्धक्यावस्था में शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने, प्राकृतिक रुप से स्वास्थपूर्ण वार्धक्यावस्था को बढ़ावा देने के लिए उपयुक्त हैं।

[1] J Community Med Health Care. 2016; 1(1): 1003.
[2] https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/ageing-and-health
[3] Indian journal of community medicine : official publication of Indian Association of Preventive & Social Medicine, 33(4), 214–218.

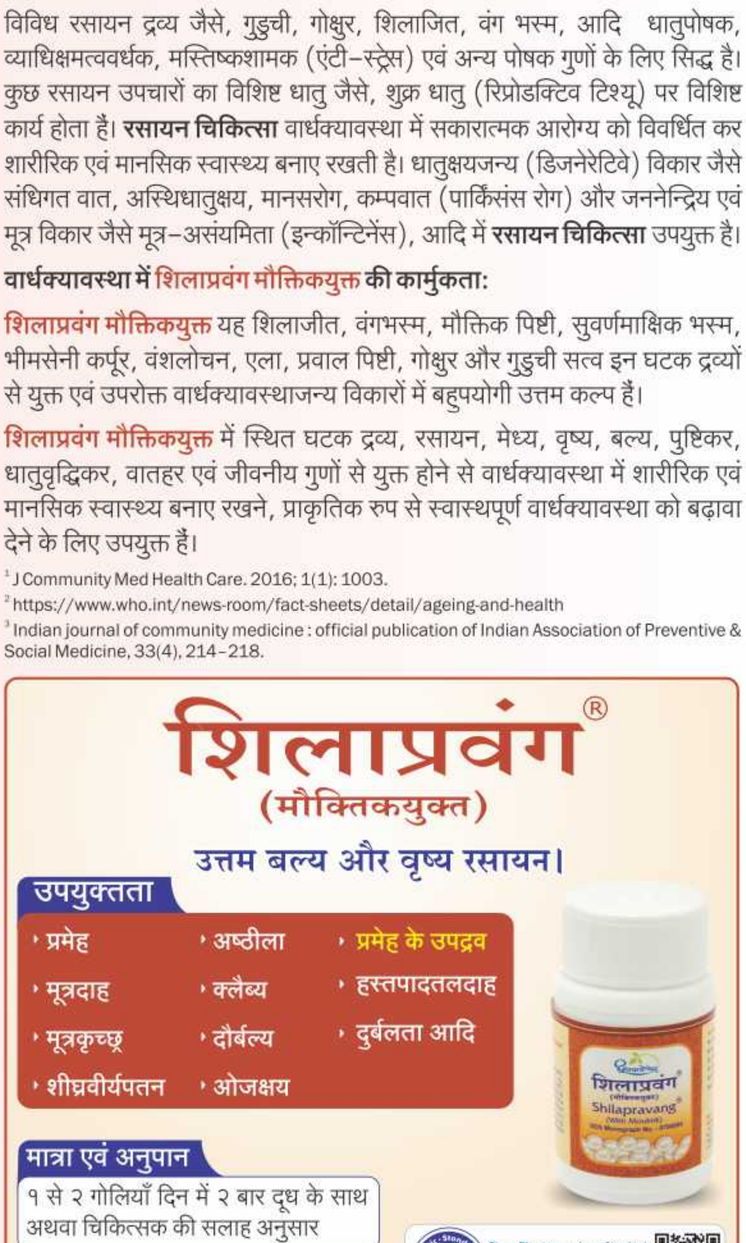

अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन – अम्लपित्त से त्वरित और दीर्घकालीन उपशय।

अम्लपित्त यह अन्नवह स्त्रोतस सम्बन्धी एक सामान्य विकार हैं। माधवनिदान के मधुकोष टिका में अम्लपित्त व्याधी का विस्तृत वर्णन किया है।

अम्लगुणोद्रिक्तं पित्तं अम्लपित्तम्। – मा.नि. अम्लपित्त १ टीका

कटुरसात्मक स्वभाव का पाचक पित्त जब निदान सेवन से विकृत या दूषित होता है तब वह **अम्लपित्त** नामक व्याधी की निर्मिती करता हैं।

यहां उद्रिक्त शब्द का अर्थ है वृद्धि होना अथवा अत्यधिक स्राव होना, अर्थात अम्ल रसात्मक पित्त की मात्रात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि होना हैं ।

माधवनिदान ने **अम्लपित्त** के हेतु का वर्णन करते हुए कहा है कि,

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम्।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः।।
– मा.नि.

दुष्ट (दूषित) एवं विरुद्ध (असंगत) आहार का सेवन, अत्याधिक अम्ल, विदाही, और अन्य पित्त दोष प्रकोपक अन्न एवं पेय सेवन से अग्निमांद्य होकर **अम्लपित्त** व्याधी की उत्पत्ति होती हैं।

आचार्य माधव ने अम्लपित्त के निम्नलिखित लक्षण बताए हैं।

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक्।।' – मा.नि.

अम्लपित्त के रुग्ण में अविपाक (अजीर्ण), क्लम, उत्क्लेश, तिक्त एवं अम्लउद्गार, शरीर–गौरव, हृत्कंठ दाह और अरुची लक्षण दिखाई देते हैं।

आचार्य माधव जी ने दूषित पित्त की गति के अनुसार, **अम्लपित्त** व्याधी के २ प्रकार बताएँ है , – **अधोगामी एवं उर्ध्वगामी अम्लपित्त** और उनके लक्षणों का निम्नोक्त वर्णन किया हैं।

अधोगामी अम्लपित्त:

तृड् – दाह – मूर्च्छा – भ्रम – मोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।
हृल्लास – कोठानलसाद – हर्ष – स्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित्।।– मा.नि.

अधोगामी अम्लपित्त में तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, मोह, उत्क्लेश, शीतपित्त (अर्टीकॅरिअल हायव्स), अग्निमांद्य, रोमहर्ष, त्वचा विकार, थकावट, स्वेदाधिक्य और शरीर का वर्ण अत्यधिक रुप से पीत होना, यह लक्षण दिखाई देते हैं।

उर्ध्वगामी अम्लपित्त:

वान्तं हरित्पीतक – नील – कृष्णमारक्त – रक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन।।
भुक्ते विदग्धे त्वथवाँप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठ – हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च।।
कर – चरण – दाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डल–पिडकाशतनिचितगात्ररोगचयम्।। – मा.नि.

अम्लपित्त के रुग्णों में सामान्यतः उर्ध्वगामी अम्लपित्त के रुग्णों की संख्या अधिक होती है और इनके लक्षणों में हरित, पीत, निल, कृष्ण, लोहित, आदि वर्ण की छर्दि, जो कि अत्याधिक अम्ल रसयुक्त, प्रकृति में पिश्चिल होती है। भोजन के पश्चात आमाशय में दाह, अथवा अम्ल या तिक्त रस की छर्दि होती हैं। इसके अलावा अन्य लक्षण जैसे, हृत्कंठ और आमाशय में दाह, शिरःशूल, हस्त–पादतल–दाह और उष्मानुभूति, अरुचि, ज्वर, कफ–पित्त से संबंधित विकार और कण्डु एवं त्वकमण्डल (अर्टीकॅरिअल हायव्स), यह लक्षण दिखाई देते हैं।

माधवनिदान द्वारा वर्णित **अम्लपित्त** व्याधी के हेतु एवं लक्षण योगरत्नाकर द्वारा वर्णित **अम्लपित्त** के लक्षणों से काफी साधर्म्य रखते है। आधुनिक शास्त्र द्वारा वर्णित एसिड पेप्टिक डिसऑर्डर (APD) जिसमे गैस्ट्रो–एसोफैगल रिफ्लक्स रोग (GERD); आमाशय, ग्रहणी और अन्ननलिका संबंधी व्रण, आदि के एक समूह से **अम्लपित्त** का साधर्म्य दिखाई देता हैं। अनुचित जीवनशैली (विहार) और आहारविधी से विश्वभर में इसका प्रसार निरंतर रुप से बढ़ रहा हैं।

भारत के १००० चिकित्सकों के एक सर्वेक्षण में यह ज्ञात हुआ है कि, GERD (३९.२%), पेप्टिक अल्सर रोग (३७.१%) और नॉन–अल्सर डिस्पेपसिया (२५.२%) के लगभग ५०% रुग्णों में शीघ्र एंडोस्कोपी की आवश्यकता होती है [1]।

जठरांत्र विकारों के प्रमुख कारणों में *Helicobacter pylori, Escherichia coli* एवं *Entamoeba histolytica* का समावेश होता है, जिनका माध्यम दूषित अन्नपान का सेवन है। इसके अलावा, अन्य पित्त प्रकोपक हेतु आमाशय की श्लैष्मिक कला को क्षति पंहुचाते हैं। श्लैष्मिक कला को क्षति के कारण, आमाशय एवं ग्रहणी की अंतस्त्वचा *Helicobacter pylori* संक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील हो जाती है। माधवनिदान द्वारा वर्णित **अम्लपित्त** के सामान्य लक्षण, जैसे कि, आमाशयशूल, उत्क्लेश, अरुचि, अम्लोद्गार, हृत्कंठ–दाह, अपचन, आदि, *Helicobacter pylori* संक्रमण के लक्षण से साधर्म्य रखते हैं ।

एसिड पेप्टिक डिसऑर्डर का तीव्र स्वरुप निदान तथा उपचार के व्यय में वृद्धि कर, रुग्ण के स्वास्थ्य एवं दैनंदिन जीवनशैली अथवा कार्यक्षमता पर प्रतिकूल रुप से प्रभावित कर सकता है।

मानव शरीर में आमाशय एकमात्र ऐसा अवयव है, जो pH 2 अम्ल (एसिड) द्रव का स्रवण करता है और इस तरह का अम्ल स्राव अन्नद्रव्यजनित सुक्ष्मकृमि निष्क्रिय कर, अन्नपचन एवं विभिन्न पोषक तत्वों (प्रोटीन, लोह, कैल्शियम और विटामिन–१२) का पाचन और अवशोषण करने हेतु महत्वपूर्ण है।

यह आमाशयिक अम्ल (गैस्ट्रिक एसिड) आमाशय एवं आंत्र के अंतस्त्वचा को नुकसान पहुंचा सकता है, इसलिए शरीर में विभिन्न सुरक्षात्मक तंत्र होते हैं, जिससे अमाशयिक स्राव से प्रेरित क्षति को रोका जा सकता है। जब ये सुरक्षात्मक तंत्र विफल हो जाते हैं, तो कम pH वाले अमाशयिक अम्ल स्राव (गैस्ट्रिक एसिड सीक्रेशन) आमाशय एवं आंत्र के अंतस्त्वचा को नुकसान पहुँचाता हैं, जिसके परिणामस्वरुप आमाशय एवं ग्रहणी व्रण, गैस्ट्रोएसोफेगल रिफ्लक्स रोग (GERD), बरेंट्स इसोफेगस और फंक्शनल डिस्पेप्सिया जैसे व्याधी होने की संभावना बढ़ जाती हैं [2]।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में APD की चिकित्सा करने हेतु एंटासिड, एच २ रिसेप्टर अंटागोनिस्ट (फॅमोटिडीन, रेनिटिडिन, आदि) और प्रोटॉन पंप इन्हिबिटर (ओमेप्राजोल, रॉबिप्राज़ोल, आदि) शामिल हैं। इन औषधीयों की अपनी परिसीमाएं है और इनका उपयोग विभिन्न दुष्प्रभावों से जुडा हैं। एंटासिड के सामान्य दुष्प्रभावों में **अम्लपित्त** की अतिवृद्धी (रिबाउंड हाइपरएसिडिटी) और मलावष्टंभ का समावेश है।

कुछ समय पूर्व आधुनिक चिकित्सा पद्धति की प्रचलित औषधि रेनिटिडिन के उपयोग पर विश्व की कई देशों में रोक लगाई गई। इस रोक का कारण

N-Nitrosodimethylamine (NDMA) नामक संभाव्य कर्करोग कारक घटक की उपस्थिती बताई जाती है। प्रोटॉन पंप इन्हीबिटर (पीपीआई) के दीर्घकालीन उपयोग के कारण अस्थि घनत्व (बी.एम.डी.) कम होकर अस्थिभग्न जोखिम में वृद्धि होती है।

अम्लपित्त की सुलभ चिकित्सा हेतु अधिक सुरक्षित एवं गुणकारी औषधियों की आवश्यकता हैं। **अम्लपित्त** चिकित्सा में आयुर्वेद वर्णित विभिन्न काष्ठौषधी, भस्म एवं अनेक कल्पों का प्रशस्त उपयोग किया जा सकता है। आयुर्वेद औषधियाँ अत्याधिक आमाशय स्त्राव विरोधी (एसिड न्यूट्रलाइज़िंग), आमाशय अंतस्त्वचा संरक्षक (साइटोंप्रोटेक्टीव) एवं आमाशय व्रणरोपक (अल्सर हीलींग) गुणों के लिए वैज्ञानिक रूप से सिद्ध है।

योगरत्नाकर ने **अम्लपित्त** चिकित्सा में **तिक्त रस प्रधान** पाचकाग्नि वर्धक औषधियों की उपयोगिता का उल्लेख किया हैं।

पाचनं तिक्तबहलं पथ्यं च परिकल्पयेत्। – योगरत्नाकर

अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन की अम्लपित्त में कार्मुकता–

अम्लपित्तमिश्रणं तु शौक्तिकतिक्तभूयिष्ठम्।
जयेदम्लपित्तजन्यां छर्दिमन्नविदाहजाम्।।

अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन अम्लपित्त लक्षणों से त्वरित और दीर्घकालीन उपशय प्रदान करता है। इसमें स्थित घटक द्रव्य जैसे, शौक्तिक भस्म, तिक्त रसात्मक वासा, गुडुची, पित्तपापड़ा, निम्ब, चिरायता, भृंगराज, त्रिफला, पटोल एवं यष्टिमधु उत्तम पित्त शामक है।

शौक्तिक भस्म: स्निग्ध, रूच्य, दीपन, और मधुर गुणों से आमाशय के अत्याधिक अम्लस्राव को नियंत्रित करता है और उदरशूल एवं उरोदाह जैसी लक्षणों में त्वरित राहत देता है।

अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन में स्थित तिक्त रसात्मक वनस्पती, अपने शीत, हृद्य, छर्दिहर, रसायन, बल्य, दीपन, पाचन, दाहशामक, पित्तघ्न, रूच्य, कफवातघ्न, शोथघ्न, व्रणरोपक, विषघ्न, तृष्णानाशक, एवं शूलघ्न गुणों से अम्लपित्त में बहुपयोगी हैं।

अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन की घटक द्रव्य एवं गुणकर्म:

घटक द्रव्य	गुणकर्म
वासा	छर्दिहर, आमाशय व्रणरोपक
गुडुची	आमाशय व्रणरोपक
पित्तपापड़ा	अम्लपित्तघ्न, आमाशय संरक्षक
निम्ब	आमाशय स्राव नियंत्रक, आमाशय एवं ग्रहणी व्रण रोपक
चिरायता	आमाशय व्रणरोपक
भृंगराज	अम्लपित्तघ्न, आमाशय संरक्षक
त्रिफला	व्रणरोपक, आमाशय संरक्षक
पटोल	आमाशय व्रणरोपक
यष्टिमधु	आमाशय व्रणरोपक
शौक्तिक भस्म	अम्लपित्तघ्न, आमाशय व्रणरोपक, शूलहर

त्रिफला, गुडुची, यष्टिमधु एवं पटोल जैसे घटक द्रव्य एलेजिक एसिड का एक समृद्ध स्रोत हैं और Helicobacter pylori संक्रमण विरोधी गुणयुक्त हैं। Helicobacter pylori संक्रमित रुग्णों में हुए वैज्ञानिक अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि, एलेजिक एसिड में Helicobacter pylori प्रतिबंधात्मक (प्रिवेन्टिव) एवं चिकित्सिय (थेराप्यूटिक) गुण है।[3] अन्य घटक द्रव्य जैसे, **पित्तपापड़ा, निम्ब, वासा,** और **चिरायता** तिक्त रस प्रधान होने से आमाशय अंतस्त्वचा को सुरक्षित रखकर आमाशय व्रणरोपण का कार्य करते हैं।

इंडोमेथेसिन जन्य गैस्ट्रिक अल्सर के वैज्ञानिक अध्ययन (एनिमल स्टडी) में **अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन** के आमाशय व्रणरोपक एवं आमाशय संरक्षक गुण सिद्ध हुए हैं[4]। **अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन** अविपाक, अम्लउद्गार, अरुचि, उत्क्लेश, हृद्दाह, और परिणामशूल चिकित्सा में बहुउपयोगी है।

इस तरह **अम्लपित्त मिश्रण सस्पेंशन अम्लपित्त** चिकित्सा के लिए एक प्राकृतिक, प्रभावी और सुरक्षित विकल्प है।

अम्लपित्त मिश्रण®
सस्पेंशन
अम्लपित्त से त्वरित और दीर्घकालीन उपशय।

उपयुक्तता
- अविपाक
- उत्क्लेश
- अम्लोद्गार
- हृद्दाह
- अरुचि
- परिणामशूल

सेवन से पहले बोतल अच्छी तरह से हिलायें।

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ चम्मच खाने से आधा घंटा पहले, दिन में २ से ३ बार है अथवा रोगावस्थानुसार प्रयोग कर सकते हैं।

उपलब्धता :
२०० मि.ली., ४५० मि.ली.

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 070003
Amlapitta Mishran Suspension

[1] Rai, Ramesh & Gangadhar, A. & Mayabhate, Mayur. (2016). Clinical profiling of patients with Acid Peptic Disorders (APD) in India: a cross-sectional survey of clinicians. International Journal of Basic & Clinical Pharmacology. 6. 194. 10.18203/2319-2003.ijbcp20164779.

[2] Kinoshita Y, Ishimura N, Ishihara S. Advantages and Disadvantages of Long-term Proton Pump Inhibitor Use. J Neurogastroenterol Motil 2018; 24:182-196. https://doi.org/10.5056/jnm18001

[3] Ronita De et al, Antimicrobial activity of ellagic acid against Helicobacter pylori isolates from India and during infections in mice, Journal of Antimicrobial Chemotherapy, Volume 73, Issue 6, June 2018, Pages 1595–1603, https://doi.org/10.1093/jac/dky079

[4] Vemula Sampath K, Chawada Mukesh B, Thakur Kapil S, Vahalia Mahesh K. Antiulcer activity of Amlapitta Mishran suspension in rats: A pilot study. Ancient Science of Life. 2012;32(2):112.

स्त्री व्याधिहारी रस की पॉलीसिस्टिक ओवरी सिंड्रोम (PCOS) में उपयोगिता ।

पॉलीसिस्टिक ओवरी सिंड्रोम (PCOS) प्रजनन आयु की युवतीओं में पाए जानेवाले सामान्य एंडोक्रिनोलॉजिकल व्याधियों में से एक है। यह नैदानिक रुप से महिलाओं में बीजग्रंथी की विकृती, हाइपरएन्ड्रोजेनिज्म, चहरे पर अतिरोमता (हिर्सुटिज़्म), पुरुष स्वरुप गंजापन (मेल पैटर्न बाल्डनेस), युवान पिटिका, मन्यापर कृष्ण वर्णीय वैवर्ण्य, (अकान्थोसिस नाइग्रिकन्स) के रुप में होता है। **PCOS** ग्रसित महिलाओं में, बीज़ ग्रंथियाँ पुरुष प्रधान होर्मोन (एण्ड्रोजन) का सामान्य से अधिक प्रमाण में स्त्रवण करतीं हैं। इसके कारणस्वरुप, स्त्री प्रधान होर्मोन का असंतुलन होकर अनियमित रज:स्राव होता है। डिंबोत्सर्जन (ओवुलेशन) समय पर न होने से अनेक अपरिपक्व बीज़ ग्रंथियाँ (सिस्ट) अंडाशय में निर्माण होते हैं।

भारत में **PCOS** की व्यापकता ३.७ से २२.५% तक हैं[1]। **PCOS** व्याधि के कारण महिलाओं के प्रजनन एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। **PCOS** ग्रसित महिलाओं में वन्ध्यत्व (इन्फर्टिलिटी) की व्यापकता ७०–८०% के बीच होती है[2]। **PCOS** ग्रसित महिलाओं में स्थौल्य एवं इंसुलिन प्रतिरोध (इंसुलिन रेजिस्टन्स) सामान्य रुप से पाए जाते हैं और **PCOS** ग्रसित महिलाओं में स्थौल्य की व्यापकता ३०–८५% तक अनुमानित है[3]।

PCOS चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य मौजूदा लक्षणों की पहचान करना और उनका उचित प्रबंधन करना, स्त्रियों में प्रजनन क्षमता को प्राकृत रखना एवं मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखना यह है। **PCOS** ग्रसित स्थूल महिलाएँ अगर ५–१०% तक वजन घटाती है, तो उनमें हाइपरएंड्रोजेनिज्म और हाइपर इंसुलिन के स्तर में गिरावट होती हैं[4]।

आयुर्वेद और PCOS: आयुर्वेद शास्त्रकारों ने बहुसंख्यक स्त्रीरोग संबंधी विकारों का वर्णन **योनिव्यापद्** नामक व्याधि अन्तर्गत किया है । आयुर्वेद ग्रंथो में **PCOS** इस व्याधि का प्रत्यक्ष एवं विस्तृत वर्णन कही पर भी नहीं दिखाई देता हैं, किन्तु **PCOS** के लक्षणों का आयुर्वेद में वर्णित कुछ परिभाषाओं से साधर्म्य हैं, जैसे–

अनार्तव / नष्टार्तव: इसमें प्रकुपित वात एवं कफ दोष आर्तववह स्रोतस मार्गावरोध कर रज:स्राव को रोकते हैं।

अरजस्का योनिव्यापद्: प्रकुपित पित्त दोष से दूषित रज शरीर धातुओं को गंभीर रुप से शुष्क कर देता हैं, परिणामस्वरुप स्त्री शरीर में पाण्डुत्व आकर आर्तव नाश होता हैं।

लोहिताक्ष योनिव्यापद्: प्रकुपित वात–पित्त दोष के कारण आर्तव क्षय (oligomenorrhoea) लक्षण दिखाई देता है।

शुष्का योनिव्यापद्: प्रकुपित वात दोष के कारण मूत्र एवं मलावरोध होकर, स्त्री योनि में शुष्कत्व और तीव्र वेदना होती हैं।

वन्ध्या योनिव्यापद्: प्रकुपित वात दोष के कारण अनार्तव तथा वन्ध्यत्व होता हैं।

षंडी योनिव्यापद्: प्रकुपित वात दोष के कारण बीज़ दुष्टि एवं अनार्तव लक्षण होता हैं।

रजोदुष्टि एवं अष्टार्तवा दुष्टि: प्रकुपित वात, पित्त और कफ दोष के कारण उत्पन्न ८ प्रकार के रजस्राव सम्बन्धी विकृति।

आचार्य काश्यप ने कल्पस्थान में रेवती कल्प अध्याय का वर्णन करते समय पुष्पघ्नी जातिहारिणी नामक व्याधि का वर्णन किया हैं, और जिसके लक्षण PCOS के लक्षणों से साधर्म्य रखते हैं।

> **वृथा पुष्पं तु या नारी यथाकालं प्रपश्यति।**
> **स्थूललोमशगण्डा वा पुष्पघ्नी साऽपि रेवती।।** – काश्यप

पुष्पघ्नी जातिहारिणी योनिव्यापद् ग्रसित स्त्रियों में प्रतिमाह रजोदर्शन तो होता हैं, किन्तु वह **व्यर्थ–बीज़ रहित** (अनओवुलेटरी) होता है, इन स्त्रियों में गण्डस्थल स्थूल एवं लोम युक्त होते है। इन लक्षणों को आज आधुनिक काल में हम **PCOS** के लक्षणों से सम्बन्धी लक्षण कह सकते हैं।

PCOS संप्राप्ति घटक: PCOS की सम्प्राप्ति में, प्रकुपित वात एवं कफ **दोष**, दूषित रस एवं मेद **धातु**, आर्तव **उपधातु**, दूषित आर्तववह **स्त्रोतस** एवं **जाठराग्नि** और **धात्वाग्निमांद्य** सम्प्राप्ति घटक हैं।

आयुर्वेद में, **PCOS** की चिकित्सा के लिए सम्प्राप्ति घटकों का विचार करते हुए, रज:स्राव को नियमित बनाए रखने के लिए विविध उपाय वर्णित हैं। आधुनिक शास्त्र में वर्णित **PCOS** की चिकित्सा औषधियाँ विभिन्न प्रकार के तीव्र स्वभाव के दुष्परिणाम युक्त होते हैं, जिसके चलते आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली **PCOS** की चिकित्सा हेतु उच्चतम मानी जाती है।

PCOS में स्त्री व्याधिहारी रस की कार्मुकता:

स्त्री व्याधिहारी रस, यह रसौषधीं एवं वनौषधीं का एक उत्तम संयोग हैं। जिसमें, सूतिकाभरण रस (सुवर्णयुक्त), लताकरंज बीज़ घन, शताव्हा बीज़, कार्पासमूल, त्रिकटु इन घटक द्रवों को लशुन स्वरस और असन क्वाथ की भावना दी गयी हैं।

सूतिकाभरण रस त्रिदोषशामक, उष्ण, तीक्ष्ण, लेखन और सर्वरोगहर गुणों से युक्त हैं। लताकरंज त्रिदोषशामक, वेदनास्थापक और रक्तशोधक गुणयुक्त है। **लताकरंज** इन्सुलिन प्रतिरोध (इंसुलिन रेजिस्टन्स) को कम कर इन्सुलिन संवेदनशीलता (इंसुलिन सेंसिटिविटी) वृद्धिकर, हाइपरएन्ड्रोजेनिज्म के स्तर कम कर के डिंबोत्सर्जन (ओवुलेशन) कार्य में सहायक सिद्ध हैं[5]। **शताव्हा बीज़** वातकफ हर, शूलहर, योनिशूलहर, पाचक और हृद्य गुणयुक्त हैं। रजस्राव नियमित कर, रजोप्रवृत्ति के समय रक्त के प्रवाह में सुधार कर कष्टार्तव से राहत दिलाने में सहायक हैं। **कार्पासमूल** लघु, उष्ण, वातहर गुणयुक्त है। यह मेदोहर, मेहहर एवं रजस्राव वर्धक (emmenagogue) है। **त्रिकटु** कफशामक, स्थौल्यहर, मेदोहर, एवं मेहहर गुणयुक्त है। **लशुन** में कफशामक, वातशामक, अनुलोमन एवं शूलप्रशमनम गुणधर्म होते हैं। **असन** कफहर, मेहहर, एवं रसायन गुण से युक्त हैं। **त्रिकटु, लशुन** और **असन** स्थौल्यहर एवं मेदोहर गुण के लिए प्रस्थापित हैं एवं यह इन्सुलिन प्रतिरोध (इंसुलिन रेजिस्टन्स) को घटाकर **PCOS** से ग्रसित स्त्रियों में बहुउपयोगी हैं।

इसप्रकार, **स्त्री व्याधिहारी रस** उष्ण, तीक्ष्ण, लेखन, वातकफहर, अनुलोमन, शूलप्रशमनं, स्थौल्यहर, एवं मेदोहर गुण से डिंबोत्सर्जन (ओवुलेशन) कार्य सुधारकर **PCOS** की चिकित्सा में लाभदायक हैं। इसके सेवन से **PCOS** संबंधी अनार्तव, स्थौल्य, एवं वंध्यत्व जैसे लक्षणों में बेहतरीन लाभ होता हैं। इसके घटक द्रव्य वात दोष, विशेष रुप से अपान वायु को नियंत्रित कर अपान क्षेत्र के अवयव तथा उन्हके कार्यपर प्रभावी नियंत्रण लाने में सहायक हैं। लताकरंज, कार्पासमूल, लशुन, और शताव्हा जैसे घटक द्रव्य प्रभावी रुप से आर्तववह स्रोतस पर कार्य कर रज:स्राव को नियमित करने में सहायक हैं।

1 Indian J Med Res 2019;150:333-44
2 Clinics (Sao Paulo, Brazil), 70(11), 765–769.
3 Indian J Endocr Metab 2019;23:257-62
4 https://www.intechopen.com/books/debatable-topics-in-pcos-patients/lifestyle-changes-and-weight-loss-effects-in-pcos.
5 J Appl Pharm Sci, 2020; 10(02):072–076.

स्त्री व्याधिहारी रस™
बीजविकृतीजन्य स्त्री विकारों की परिपूर्ण चिकित्सा।
१८०० मि.ग्रा. लताकरंज (कुबेराक्ष) चूर्ण के समान गुणयुक्त
उपयुक्तता
अनियमित मासिक धर्म
P.C.O.D. से संबंधित लक्षण
* अनार्तव, स्थौल्य और वंध्यत्व
मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोलियाँ दिन में २ से ३ बार, कुमारी आसव नं १, कोष्ण जल के साथ अथवा वैद्यकिय सलाहनुसार
उपलब्धता : ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902644
Stree Vyadhihari Rasa

ग्रहण्याः रोगाः ग्रहणीरोगः।

'ग्रहण्याः रोगाः ग्रहणीरोगः।' – मा.निदान/ मधुकोष टिका.

ग्रहणी (डियोडेनम) अवयव से संबंधीत रोग अथवा विकृति को **ग्रहणीरोग (इरिटेबल बोवेल सिंड्रोम– आइ.बी.एस)** कहते है।

षष्ठी पित्तधरा नाम या कला परिकीर्तिता। पक्वामाशय मध्यस्था ग्रहणी सा प्रकीर्तिता।।
ग्रहण्या बलमग्निर्हि सचापि ग्रहणींश्रितः।। – सु.उ. ४०/१६९

ग्रहणी, षष्ठी कला अर्थात पित्तधरा कला के रुप में वर्णित है, यह अवयव आमाशय और लघ्वांत्र के मध्य भाग में स्थित है। ग्रहणी को पच्यमानाशय अथवा अधोआमाशय भी कहते है।

अग्नि अधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणात ग्रहणी मता। – च.चि. १५/१६

तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता
सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराव्हया।। – अ.हृ.शा. ३/५०

ग्रहणी को अग्नि का प्रमुख स्थान माना गया है। अग्नि और पित्त के आश्रयाश्रयी भाव को देखते ग्रहणी यह जाठराग्नि अथवा पाचक पित्त का प्रमुख स्थान है।

षष्ठी पित्तधरा नाम या चतुर्विधमन्नपानं मुपभुक्तमाशयात
प्रच्युतं पक्वाशयोपस्थितं धारयति। – सु.शा. ४/१८

आहार सेवन पश्चात, भोज्य पदार्थों का ग्रहण, पाचन एवं पोषक तत्वों का अवशोषण कर, किट्ट (मल) को समानवायु की सहायता से पक्वाशय की ओर प्रवृत्त करना यह कार्य ग्रहणी द्वारा होता है।

दुष्यति ग्रहणी जन्तोरग्निसादन हेतुभिः। – सु.सू. ४०/१६६

इस ग्रहणी अवयव की स्थान एवं कार्यात्मक दुष्टी के कारण अग्निसाद (अग्निमांद्य) होकर ग्रहणीरोग होता है। ग्रहणीरोग १२.२७% (५६% पुरुषों मे, ४४% महिलाओं में) प्रचलन के साथ एक मुख्य आंत्रज व्याधि है।

ग्रहणीरोग संप्राप्ती:

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात्। सात्म्यगुरुशीतातिरुक्षसन्दुष्टभोजनात्।।
विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद् व्याधिकर्षणात्। देशकालर्तुवैषम्याद् वेगानां च विधारणात् ।।
दुष्यत्यग्निः स दुष्टोऽन्नं न तत् पचति लघ्वपि। अपच्यमानं शुक्तत्वं यात्यन्नं विषरूपताम् ।।
– च.चि.१५

अजीर्ण हेतु
↓
अग्निमांद्य
↓
अजीर्ण
↓
विदग्धता, शुक्तिपाक, आम
↓
ग्रहणी, स्थान, क्रिया, कार्य वैगुण्य
↓
मलद्वारा अपक्व आहार का निष्क्रमण
↓
ग्रहणी रोग

अभोजन (भोजन का सर्वथा परित्याग), अजीर्ण होने पर भी भोजन करने से, अतिभोजन, विषमाशन करने से (विषम मात्रा एवं विषम काल भोजन), असात्म्य, गुरु (देर से पचनेवाले), शीत, अति रुक्ष, दूषित, आहारों का सेवन करने से, विरेचन–वमन–स्नेहन–विभ्रम (अतियोग) से, व्याधि के कारण उत्पन्न कृशता से, देश–काल–ऋतु की विषमता से एवं अधारणीय वेगों के धारण करने से पाचकाग्नि दूषित हो जाती है। यह दूषित अग्नि अल्प अथवा लघु भोजन का पाचन करने मे असमर्थ होती है। यह अपक्व आहार शुक्तता (अम्लता) को प्राप्त होकर विषरुप आम में परीवर्तित हो जाता है।

अधस्तु पक्वमामं वा प्रवृत्तं ग्रहणीगदः।
उच्यते सर्वमेवान्नं प्रायो ह्यस्य विदह्यते।। – च.चि.१५

जब दूषित और दुर्बल पाचकाग्नि द्वारा अपक्व आहार विदग्धता को प्राप्त होकर अधोमार्ग से निष्काषित होता है, तो उसे ग्रहणीरोग कहा जाता है।

अतिसृष्टं विबद्धं वा द्रवं तदुपवेश्यते। तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः।।

शूनपादकरः सास्थिपर्वरुक् छर्दनं ज्वरः।
लोहामगन्धिस्तिक्ताम्ल उद्गारश्चास्य जायते।। – च.चि.१५

ग्रहणीरोग ग्रसित रुग्णों का मल अत्यंत बंधा हुआ, अथवा जल सदृश पतला (द्रव मल प्रवृत्ति) होता है और मलवेगों की संख्या तथा मात्रा में भी वृद्धि होती है। यह रोगी तृष्णा, अरुचि, रसज्ञानाभाव, लालास्राव, तमश्वास, हस्त–पाद–शोथ, अस्थि–संधि–पीडा, ज्वर, तिक्त–अम्ल, एवं लोहगंधी उद्गार आदि लक्षणों से पीड़ित होते हैं।

वातात्पित्तात्कफाच्च स्यात्तद्रोगस्त्रिभ्य एव च।
हेतुं लिङ्ग चिकित्सां च शृणु तस्य पृथक् पृथक्। – च.चि.१५

ग्रहणी रोग वातज, पित्तज, कफज एवं सन्निपातज भेद से चार प्रकार का होता है.

लीनं पक्वाशयस्थं वाऽऽप्यामं स्राव्यं सदीपनैः।
शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम्।। – च.चि.१५

विभिन्न कारणों से उत्पन्न अग्निमांद्य जन्य आमदोष अधिकांश व्याधियों का मूल कारण है। इसलिए किसी भी व्याधि के चिकित्सा हेतु सर्वप्रथम दोषावस्था– साम अथवा निरामावस्था का निदान करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। व्याधि के आमावस्था में, पक्वाशय अथवा आमाशय स्थित लीन आमदोष के पाचन हेतु अग्नि दिपन अथवा शरीरगत आम निवारण हेतु लंघन पाचनादि उपचार करने चाहिए। पश्चात विशिष्ट रोग लक्षणों की चिकित्सा करनी चाहिए।

ग्रहणीरोग चिकित्सा में कुटजपर्पटी वटी का तर्काधार, औचित्य: कुटज पर्पटी, शंख भस्म, कुटज चूर्ण, मुस्ता चूर्ण युक्त एवं कुटज क्वाथ से भावित **कुटज पर्पटी वटी**, एक उत्कृष्ट **ग्रहणीरोगहर** कल्प है।

कुटज पर्पटी वटी ग्रहणीरोग चिकित्सा सिद्धांतो को ध्यान मे रखते हुए संयोजित किया गया है। युगों से आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्रों में अतिसार और प्रवाहिका चिकित्सा हेतु **कुटज** के प्रयोग का वर्णन किया है। **कुटज** आंत्र की संरचनात्मक और कार्यात्मक अखंडता बनाए रखता है।

पर्पटी को **'ग्रहणीगजमर्दनदक्षतरा'** के रुप में वर्णित किया गया है। पर्पटी कल्पों की संयोजना विशेष रुप से ग्रहणी में अवशोषण (एब्सॉर्प्शन) एवं ग्रहणी अवयव को बल प्रदान करने के लिए की गई है। पर्पटी कल्प दीपन, पाचन, योगवाही, कृमिघ्न, आदि गुणों द्वारा ग्रहणीस्थान को बल प्रदान करते है। **कुटज पर्पटी** संपूर्ण दृष्टिकोण से ग्रहणीरोग चिकित्सा मे एक प्रभावी उपाय है। **मुस्ता** दीपन एवं पाचन गुणों के कारण अग्निदीपन एवं आंत्र को बल प्रदान कर अतिसारघ्न कार्य दर्शाता है। उद्वेष्टन विरोधि गुण से उदरशूल की तीव्रता कम होकर ग्रहणी चिकित्सा में बहुउपयोगी है।

[1] J Datta Meghe Inst Med Sci Univ 2018;13:87-90

कुटज पर्पटी वटी®

अतिसार एवं प्रवाहिका में उपयुक्त।

उपयुक्तता
- अतिसार
- प्रवाहिका
- अतिसारयुक्त ग्रहणी (IBS - D)

कुटज का एकमात्र पर्पटी कल्प

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोलियाँ दिन में २ से ३ बार कुटजारिष्ट, जीरकाद्यारिष्ट, तक्र, कोष्ण जल के साथ अथवा रोगावस्थानुसार

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 0801884
Kutaja Parpati Vati

उपलब्धता : ६० गोली, ५०० गोली

उदावर्तिनी योनिव्यापद् में अस्थिपोषक टेबलेट की कार्मुकता ।

आचार्य चरक ने चरक संहिता चिकित्सास्थान अध्याय ३० में विविध प्रकार के योनिव्यापदों का वर्णन किया हैं। चरक के अनुसार, प्रकुपित वात दोष **उदावर्तिनी योनिव्यापद्** का प्रमुख कारण है, और रजोप्रवृत्ती होने से लक्षणों में उपशय होता हैं।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः।
सा रुगार्ता रजः कृच्छ्रेणोदावृत्त विमुञ्चति।।
आर्तवे सा विमुक्ते तु तत्क्षणं लभते सुखम्।
रजसो गमनादूर्ध्वं ज्ञेयोदावर्तिनी बुधैः।। – च. चि. ३०

आचार्य चरक के अनुसार, विकृत अपान वायु की उर्ध्वगति होने से रज भी उर्ध्वगत हो जाता है, परिणामस्वरुप रजःकाल के समय सशूल तथा सकष्ट रजोप्रवृत्ती की अनुभूति होती है। इसके विपरीत रज प्रवर्तन होते ही लक्षणों में उपशय होता हैं। इस प्रकार की रजः की उर्ध्वगति को उदावृतम् कहा जाता है, और इस स्थिति को **उदावर्तिनी योनिव्यापद्** कहते हैं। सशूल, फ़ेन युक्त रजोप्रवृत्ती के साथ, अंगमर्द एवं अस्वस्थता जैसे अन्य लक्षणों की भी अनुभूति होती हैं।

उदावर्तिनी योनिव्यापद् में अपान वायु का विकृत होना यह एक प्रमुख कारण हैं, और अपान वायु निम्नलिखित कारण से विकृत होता है –

- वात प्रकोपक आहार एवं विहार का सेवन
- धातुक्षय
- मार्गावरण

नहि वाताद्दते योनिर्नारीणां संप्रदुष्यति।
शमयित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम्।। – च. चि. ३०

आचार्य चरक ने सभी प्रकार के योनिव्यापदों का मूल कारण वात दोष माना है, और विविध 'वातहर चिकित्सा' प्रणाली को योनिव्यापद् की प्रमुख चिकित्सा के रुप में उल्लेखित किया हैं।

तत्र अस्थीनि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेद रक्तयोः।
श्लेष्मा शेषेनु तेन एषां आश्रय आश्रयिणां मिथः ।।
यद् एकस्य तदन्यस्य वर्धन क्षपन औषधं।
अस्थि मारुतयोः नैवं प्रायो वृद्धिः हि तर्पणात्।। – अ.हृ.सू. ११

आचार्य वाग्भट जी ने अस्थिधातु एवं वात दोष का आश्रय–आश्रयी भाव का वर्णन किया है, और अस्थिधातु को वात दोष का प्रमुख स्थान बताया हैं।

अस्थि धातुक्षय, धातुक्षय जन्य वात वृद्धी का प्रमुख कारण है, और अस्थिधातु पोषक द्रव्य वात दोष शमन में सहायक होते हैं। प्रकुपित वात दोष से उत्पन्न **उदावर्तिनी योनिव्यापद्** चिकित्सा में अस्थिधातु पोषण आवश्यक होता हैं, जिससे की प्रकुपित वात दोष का शमन होकर लक्षणों की तीव्रता कम होने में लाभ होता हैं।

आधुनिक शास्त्र में वर्णित, **डिसमेनोरिया (कष्टार्तव)** एवं **प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम (पीएमएस)** लक्षणों का **उदावर्तिनी योनिव्यापद्** लक्षणों से साधर्म्य है।

डिसमेनोरिया (कष्टार्तव), यह प्रजनन अवस्था की स्त्रियों में पाया जाने वाला एक सामान्य विकार है एवं श्रोणी शूल का एक सामान्य कारण है।

डिसमेनोरिया (कष्टार्तव) ५० प्रतिशत से भी अधिक रजोमती स्त्रियों को प्रभावित करता हैं, और शारीरिक एवं मानसिक अस्वस्थता की वृद्धी में कारक हैं। यह स्त्रियों कि दैनंदिन जीवनशैली की कार्यक्षमता को बाधित करता है एवं कुमारियों की शैक्षणिक गतविधियों में बाधा उत्पन्न करता है।

प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम (पीएमएस)– यह शारीरिक, मानसिक – मनोवैज्ञानिक एवं भावनात्मक लक्षणों का एक संयोग है, जिसकी तीव्रता डिम्बोत्सर्जन पश्चात बढ़ जाती हैं, और रजोप्रवृत्ती होते ही लक्षण तीव्रता में लघुता होती हैं।

एक अध्ययन के अनुसार, भारत में २० प्रतिशत महिला **प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम (पीएमएस)** ग्रसित हैं, जिनमें से ८ प्रतिशत महिलाओं में इस व्याधि का तीव्र रुप दिखाई देता हैं। तीव्र रुप की **प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम** अवस्था को **प्रीमेन्स्ट्रुअल डिस्फोरिक डिसॉर्डर (पी.एम.डी.डी.)** कहा जाता हैं। **पीएमएस** के कारण महिलाओं की स्वास्थ्य गुणवत्ता (क्वॉलिटी ऑफ़ लाइफ) पर प्रतिकूल प्रभाव होता है[1]।

अस्थिपोषक टेबलेट की उदावर्तिनी योनिव्यापद् में कार्मुकता:

कृत्वा तु वृद्धिं समानैः धात्वग्नीन् स्थापयित्वा च।
असंशयं अस्थिक्षये जनयेदस्थिसारताम्।।

अस्थिपोषक टेबलेट में स्थित **कुक्कुटाण्डत्वक भस्म** कैल्शियम का एक नैसर्गिक स्त्रोत है। विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययन **पीएमएस** लक्षणों को कम करने में कैल्शियम की उपयोगिता का समर्थन करते हैं। **पीएमएस** व्याधि संबंधी मानसिक लक्षणों को कम करने के लिए कैल्शियम की उपयुक्तता सिद्ध है[2]।

शोधित गुग्गुल और **अस्थिसंहृत** प्रभावी रुप से कष्टार्तव को कम करते हैं। **आमलकी**, **अश्वगंधा** एवं **गुडुची** मेध्य, बल्य, एवं रसायन गुणों के कारण चित्तोद्वेग (स्ट्रेस, एंग्जायटी, इमोशनल डिस्टर्बन्स) कम कर **पीएमएस** संबंधी लक्षणों से राहत दिलाते हैं।

अस्थिपोषक टेबलेट, अपने वातहर, धातुपोषक, मेध्य, रसायन और बल्य गुणों से **उदावर्तिनी योनिव्यापद् (प्रीमेन्स्ट्रुअल सिंड्रोम)** संबंधी लक्षणों की उपशय में सहायक सिद्ध होती है।

[1] Bhuvaneswari K, Rabindran P, Bharadwaj B. Prevalence of premenstrual syndrome and its impact on quality of life among selected college students in Puducherry. Natl Med J India 2019;32:17-9

[2] Shobeiri, F., Araste, F. E., Ebrahimi, R., Jenabi, E., & Nazari, M. (2017). Effect of calcium on premenstrual syndrome: A double-blind randomized clinical trial. Obstetrics & gynecology science, 60(1), 100–105.

अस्थिपोषक®
टेबलेट्स
नैसर्गिक और परिपूर्ण कैल्सिअम परिपूरक।

उपयुक्तता
- अस्थिधातु क्षय
- संधिशूल
- अस्थिसौषिर्य
- रजोनिवृत्ति संबंधित अस्थिसौषिर्य
- अस्थिभग्न
- पी.एम.एस (उदावर्ता योनिव्यापद्)
- अस्थिशूल

मात्रा एवं अनुपान
१ से २ गोलियाँ दिन में २ से ३ बार, दूध के साथ अथवा रोगावस्थानुसार

उपलब्धता : ३० गोली, ६० गोली

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 0702594
Asthiposhak Tablets

धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
स्वास्थ्य सेवा विभाग
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई- ४०० ००४.
फोन : ९१-२२-६२३४ ६३०० फॅक्स :९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये

© All Copy Rights Reserved

Arogyachintan-H/F21/C2/SDL-VR/S/0620